शोध मंथन Vol. XIII No.II Apr.-June 2022 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X
Available at: *http:/shodhmanthan.anubooks.com*

चिंतन परम्परा में 'विराट–पुरूष की जिज्ञासा'

प्राप्तिः 02.04.2022
स्वीकृतः 04.06.2022

29

डॉ० अर्चना गिरि
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
बरेली कॉलेज, बरेली
ईमेलः *archnagiri2702@gmail.com*

सारांश

वेदों की ज्ञान परम्परा में अनेकों उपनिषदों की प्राप्ति जगत के कल्याणार्थ हुई है। यह ईश्वरीय अनुग्रह है जो मानव को प्राप्त हुआ है। हमारे मनीषियों ने जिस पिपासा की शान्ति के निमित्त व्यग्र होकर इनको खोजा और सर्वसुलभ कराया वह अत्यन्त कठिन कार्य था। इसी कड़ी में वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं० श्रीराम शर्मा आचार्य का नाम भी बड़े आदर से लिया जाता है। साधनाखण्ड में 108 उपनिषदों की खोज को आपने प्रकाशित किया है जो शोध करने वाले और अध्ययन करने वाले जिज्ञासुओं के लिए अमृत तुल्य है।

उसी साधनाखण्ड में एक महत्वपूर्ण उपनिषद है **'महोपनिषद्'** यह सामवेद की अभिन्न परम्परा का प्रतीक है। इसमें महावैरागी श्री शुकनाश जी एवं विदेहराज जनक जी का संवाद ज्ञान की पराकाष्ठा को अभिव्यक्त करता है। सभी उपनिषद यह मानते हैं कि इसी शरीर से जीवन्मुक्ति मिलती है मृत्यु के पश्चात् कुछ भी प्राप्त नहीं होता है। अतः संसार में रहते हुये ऐसा कर्म करना चाहिये जिसमें मन की सारी इच्छाओं का दमन हो चुका हो। क्योंकि जब तक इच्छायें शरीर और मन को प्रभावित करती हैं तब तक शरीर आवागमन के बन्धन से छूट नहीं सकता है। महोपनिषद में 6 अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में ही जगत उत्पत्ति के समय विराट पुरूष का नारायण के रूप में वर्णन प्राप्त होता है। ''वही विराट पुरूष से यज्ञीय स्तोम, चौदह पुरूष, एक कन्या, 25 तत्वों से युक्त पुरूष, रूद्र, चार मुख वाले ब्रह्मा, छन्द, वेद और देवताओं की उत्पत्ति बताई गई है। सृष्टि के आरम्भ में एकमात्र नारायण थे। देवगण और सूर्य चन्द्रमा भी नहीं थे। अतः वह विराट पुरूष बिल्कुल अकेला था।''[1] इस प्रकार का वर्णन पुराणों में भी प्राप्त होता है कि सृष्टि के पूर्व सभी ओर जल ही जल था। हिरण्यगर्भ से सृष्टि की उत्पत्ति हुई। महोपनिषद् कहता है कि– ''अकेले स्थित विराट पुरूष ने अपने अन्तःकरण में ध्यान लगाया और यज्ञस्तोम अर्थात् श्रेष्ठ यश की उपाधि प्राप्त की। उसके द्वारा एक कन्या और चौदह पुरूष का प्रादुर्भाव हुआ। जिनमें से चौदह पुरूष ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों सहित दस इन्द्रियाँ, ग्यारहवाँ– तेजस्वी मन, बारहवाँ–अहंकार, तेरह और चौदह क्रमशः प्राण और आत्मा है तथा पन्द्रहवीं बुद्धि कन्या के नाम से कही गई है। इसके अतिरिक्त पाँच सूक्ष्मभूत तन्मात्रायें और पाँच महाभूत आदि 25 तत्वों के संयोग से एक विराट पुरूष के शरीर का निर्माण हुआ। उसी विराट शरीर में ही परमात्म स्वरूप आदिपुरूष ने प्रवेश किया। उसके कालरूप संवत्सर से ही संवत्सर प्रादुर्भूत हुये हैं।''[2] महोपनिषद में प्राप्त ये वर्णन सांख्य शास्त्र के पच्चीस तत्वों की भी व्याख्या को अपने में समाहित

किये हुये हैं। महर्षि कपिल ने भी सांख्य का ज्ञान इन्हीं वेदों से प्राप्त करके ही जगत का कल्याण किया। यह वेद का ज्ञान ईश्वरीय ज्ञान है, पूर्वाग्रह–रहित, सार्वदेशिक, सार्वकालिक सत्यज्ञान है। यह स्वतः प्रमाण है। यह ईश्वरीय ज्ञान का मूल है। आन्तरिक प्रेरणा ही वेद का ज्ञान कराने में सक्षम है। विराट पुरूष का वर्णन मन्त्रदृष्टा ऋषि ही अनुभव कर सकता है। वह पुरूष नारायण किसी अन्य कामना से ध्यातस्थ हुआ– "तब उसके ललाट से त्रिनेत्रधारी, त्रिशूलधारी, ऐश्वर्य शाली, चारों वेदों और छन्दों से युक्त जिस पुरूष का प्राकट्य हुआ। वह महादेव के नाम से प्रख्यात हुये। वह महादेव सत्य, ब्रह्मचर्य, तप, वैराग्य, नियन्त्रितमन तथा श्री सम्पन्नता से युक्त थे। पुनः उस विराट पुरूष ने ध्यान लगाया और उनके ललाट से पसीने की बूँदें निःसृत होने लगी। जो प्रकृति का मूल कहलायीं। जल के रूप में क्रियाशील द्रव्य बन कर फैल गईं। उसी जल में हिरण्यगर्भ की उत्पत्ति हुई और उससे चतुर्मुख ब्रह्मा का प्राकट्य हुआ। जिन्होंने चारों दिशायें, देवता और अन्य वैशिष्ट्य को उत्पन्न किया। स्वयं ब्रह्मा जी ने भी ध्यान लगाकर उस विराट पुरूष के दर्शन किये।"[3] यही वह विराट पुरूष है जिसका अनेक शास्त्रों और वेदों में वर्णन है। ऋग्वेद के दशम मण्डल का पुरूष सूक्त अपने दार्शनिक महत्व के लिए प्रसिद्ध है। इस आदि पुरूष के शरीर से देवताओं द्वारा सृष्टि का निर्माण किया जाना वर्णित है। ऋग्वेद के दशम मण्डल में पुरूष–सूक्त का वर्णन इस प्रकार है– "वह परमपुरूष असंख्य सिरोंवाला, असंख्य नेत्रों वाला, सहस्त्रपात्, दस अंगुल परिमाण में विश्व को भीतर एवं बाहर व्याप्त करके स्थित है। विश्व को आवृत्त करके भी बाहर निकला हुआ है। वह अमरता का स्वामी है। भूत, भविष्य, वर्तमान सब कुछ पुरूष ही है। वही अविनश्वर और नश्वर पदार्थों का स्वामी है समग्र प्राणी इस पुरूश का चतुर्थांश है। तीन चौथाई भाग अविनश्वर द्युलोक में स्थित है। सर्वप्रथम देवताओं ने कुश पर जल से अभिशेक किया। तत्पश्चात् सृष्टिकर्ता प्रजापति ने और ऋषियों ने यजन किया। उसी ने पृष्दाज्य अर्थात् दधि मिश्रित घी उत्पन्न किया। उससे ही वायप्य, आरण्य और ग्राम्य पशुओं को यज्ञ पुरूष ने उत्पन्न किया। उसी से ऋचायें, सामवेद के गीत, गायत्री आदि छन्द और यजुष उत्पन्न हुआ। वस्तुतः सृष्टि के सभी पदार्थों का मूल कारण परमपुरूष ब्रह्म ही है। ब्राह्मणत्व जाति इसका मुख, क्षत्रिय विशिष्ट जाति इसकी भुजायें, पुरूष की जंघायें वैश्य और चरणों से शूद्र उत्पन्न हुआ। इसी पुरूष से दिव्य और अदिव्य योनियाँ उत्पन्न हुईं। उससे उद्भूत हुये सृष्टि विधान ही प्रमुख धर्म बने।"[4]

यह पुरूष सूक्त ऋग्वेद में प्राप्त होता है। "महोपनिषद में यह भी बताया गया है कि ऐसे पुरूष को ब्रह्मा ने क्षीरसागर में शयन करते देखा।"[5] महाभारत के शान्ति पर्व में भी मोक्ष धर्म पर्व संभाग भरद्वाज और भृगु ऋषि के संवाद के रूप में जगत की उत्पत्ति का और विभिन्न तत्वों का वर्णन प्राप्त होता है। युद्ध के समय युधिष्ठिर का मन भी वैराग्य की ओर ही जा रहा था। तभी उन्होंने भीष्म पितामह से पूछा– "पितामह इस संसार की उत्पत्ति कैसे हुई? प्रलयकाल में यह सब किसमें लीन होता है? शौच, अशौच, धर्म, अधर्म का विधान कैसे बना? जीवात्मा कौन है? मरने के बाद की स्थिति क्या है? पितामह ने एक दृष्टान्त से युधिष्ठिर के मन को शान्त किया"[6] जब युधिष्ठिर ने दो महान ऋषियों के प्रश्न और समाधान को सुना तो उनकी चित्तवृत्ति शान्त हो गई तथा स्थिर बुद्धि से उसको सुना– "कैलाश पर्वत पर अपने तेज से देदीप्यमान महर्षि भृगु को बैठा देखा महर्षि भरद्वाज ने पूछा– हे भगवन बतायें समुद्र, आकाश, पर्वत, मेघ, भूमि, अग्नि और वायु सहित इस संसार का निर्माण किसने किया। प्राणियों की सृष्टि किस प्रकार हुई। वर्णों का विभाग कैसे हुआ। भृगु ऋषि ने

उत्तर दिया–भगवन नारायण ही सम्पूर्ण जगत स्वरूप है वे ही सबके अन्तर्रात्मा एवं सनातन पुरूष हैं। वे ही कूटस्थ, अविनाशी, अव्यक्त, निर्लेप, सर्वव्यापी, प्रकृति से परे हैं। उस नारायण के हृदय में जब सृष्टि संकल्प का उदय हुआ तब अपने हजारवें अंश से एक पुरूष को उत्पन्न किया। यही मानसपुरूष के नाम से प्रसिद्ध है। उसी अव्यक्त से सभी प्राणी जन्मते हैं और मरते हैं।''[7] मोक्ष धर्म पर्व में जो भृगु ऋषि ने सृष्टि का क्रम बताया है वह श्रुति सम्मत क्रम से भिन्न है। श्रुति ने आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी की उत्पत्ति क्रम बताया है। महोपनिषद में ब्रह्मा से सृष्टि की उत्पत्ति का प्राकृतिक शरीर रूप भी वैसा ही वर्णित है। जैसा शरीरधारी का शरीर है। ''पंचमहाभूत से ब्रह्मा हुये पर्वत उनकी अस्थियाँ हैं। पृथ्वी उनका मेद और माँस है। समुद्र उनका रूधिर है। आकाश उदर है। वायु उनका निःश्वास है अग्नि तेज है नदियाँ नाड़ियाँ हैं। सूर्य और चन्द्रमा अग्नि और सोम रूप में उनके नेत्र हैं। आकाश उनका मस्तक है तथा पृथ्वी पैर हैं और दिशायें भुजायें हैं। वे अचिन्त्यस्वरूपा ब्रह्म सिद्ध पुरूषों के लिये भी दुर्विज्ञेय हैं। इसमें संशय नहीं है। यह सभी रूप नारायण का ही है। वे ही अनन्त नाम से प्रसिद्ध हैं। सभी भूतों में आत्मा रूप से है। इसलिये शुद्ध हृदय से ही इन्हें जाना जा सकता है।''[8]

शास्त्रों में जब इस प्रकार का वर्णन आया हो कि ऋषियों द्वारा भी इसको जानना कठिन है तथा शुद्ध हृदय से ही इन्हें जाना जा सकता है। यह कोई छोटा तर्क या गवेषणा नहीं है। इसमें ऋषियों का गूढ़तम ज्ञान समाहित है। शैवदर्शन में प्रथम सूत्र में ही शिवजी ने ज्ञान को बन्धन कहा है। यह बात बुद्धि से भी परे है कि ज्ञान बन्धन कैसे हो सकता है? ऋषि जब ध्यानस्थ होता है तप करता है। समाधि लगाता है तब उसे बोध प्राप्त होता है। यह उसका अपना अनुभव होता है। इसका श्रेष्ठ उदाहरण भगवान बुद्ध माने जाते हैं। ज्ञान को बन्धन तब माना जाता है जब हम किसी के ज्ञान को यथास्थान जस का तस स्वीकार कर लेते हैं। उसमें आपको अलग से स्वयं अनुभूत न तो कोई तात्विक ज्ञान हुआ न ही मानसिक सन्तुष्टि मिली। इस लिये आपका ज्ञान संशय और सन्देह के बीच स्थापित हो गया। यहाँ ये इच्छाओं का जन्म होना प्रारम्भ हो जाता है, जो बन्धन का कारण बनता है। यदि ज्ञान को प्राप्त कर ऋषि लोग स्वयं के ध्यान में चिंतन न करते तो अव्यक्त की परिभाषा और व्याख्या अलग–अलग नहीं दे पाते। हमारे शास्त्र कहते हैं कि जीवित अवस्था में ही व्यक्ति जीवन्मुक्त हो जाता है। मरने के बाद कुछ प्राप्त नहीं होता है। कोई भी तत्वज्ञ या अध्यात्मज्ञानी अपना अलग अनुभव रखता है। उसका कर्म, उसका संकल्प उसे नया मार्ग दिखाते हैं। इसलिये चिंतन परम्परा में धारणा, ध्यान और समाधि जो योग के अंग हैं अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। यही हमें प्रकृति से जोड़ते हैं। मन की चित्तवृत्ति को शान्त करते हैं यही प्रक्रिया को अपना कर ऋषियों ने विराट पुरूष के चिंतन को साकार किया। अनेकों ऋषियों ने अनेकों परम्परा और मार्ग से उसको देखा और वर्णित किया।

महाभारत के शान्तिपर्व में भृगु ऋषि ने अनेक जिज्ञासाओं की शान्ति की और अन्त में विराट पुरूष के विषय में कहा कि– ''यह मानसदेव अपने नाम के अनुरूप ही अनन्त हैं माया से यह रूप कभी छोटा हो जाता है कभी बढ़ जाता है। इसलिये इसका यथार्थ स्वरूप जानना कठिन है। युधिष्ठिर जी के मन में पुनः जिज्ञासा हुई कि ब्रह्मा जी कमल से उत्पन्न हैं तो कमल श्रेष्ठ और ज्येष्ठ होगा तब ऋषि ने कहा कि– ब्रह्मा जी विराट–पुरूष का ही रूप हैं। उनके आसन के लिये ही पृथ्वी को पद्यम कहा गया है। इसी पर बैठ कर ब्रह्मा जी सम्पूर्ण लोकों की सृष्टि करते हैं

क्योंकि इसी पृथ्वी रूपी कमल की कर्णिका मेरू पर्वत है। जो बहुत ऊँचे आकाश तक गई है। उसी पर्वत के मध्यभाग में स्थित होकर जगदीश्वर सृष्टि करते हैं। इसी आकाश से चार अन्य स्थूल भूतों की उत्पत्ति होती है। जैसे आकाश से जल जो अन्धकार से ही अन्धकार स्वरूप उत्पन्न हुआ उस जल प्रवाह से वायु उत्पन्न हुआ जो बड़े भारी शब्द से प्रकट हुआ। यही वायु सभी जगह व्याप्त होती गई और कहीं शान्त नहीं हुई तब वायु और जल के संघर्ष से तेजोमय अग्निदेव का प्राकट्य हुआ जिसकी लपटें ऊपर उठ रही थीं, उसने सारा अन्धकार नष्ट कर दिया। वायु का संयोग पाकर अग्नि जल को ऊपर उछालने लगी। फिर वही जल, अग्नि और वायु के संयोग से घनीभूत होकर उसका गीला भाग नीचे गिरा जिसे पृथ्वी कहते हैं। इस पृथ्वी को सम्पूर्ण रसों, गन्धों, स्नेहों और प्राणियों की उत्पत्ति का कारण समझना चाहिये।"[9]

महोपनिषद में प्राप्त ज्ञान वह अमृत है जिसका पान समस्त ऋषियों ने किया था। इसीलिये सभी ने सृष्टि की उत्पत्ति का कारण नारायण को माना है। उन्हीं से ब्रह्मा जी प्रकट होकर सृष्टि की रचना करने लगे। नारायण के स्वरूप का जैसा वर्णन यह महोपनिषद करता है वैसा वर्णन अन्यत्र प्राप्त नहीं होता है। इसमें जो विज्ञान है वह आज के विज्ञान को भी अचम्भित कर देता है। क्षीर सागर में योगनिद्रा का आश्रय लेने वाले ध्यानस्य नारायण का स्वरूप वर्णन ब्रह्मा जी को कैसे दर्शन में आया यह महत् आश्चर्य है। क्योंकि वह नारायण का स्वरूप नहीं अपितु संसार का हृदय रूप आकार था –

"जो पदम्कोश के सदृश आकोश (सम्यक् रूप से विकसित कोश) के आकार में लम्बायमान व अधोमुख हृदय है, जिससे सतत सीत्कार शब्द निःसृत होता रहता है। उस हृदय के मध्य में एक महान ज्वाला प्रदीप्त हो रही है। वही ज्वाला दीपशिखा की भाँति दसों दिशाओं में अविनाशी प्रकाशतत्व को वितरित करती हुई सम्पूर्ण जगत को प्रकाशित कर रही है। उसी ज्वाला के बीच में थोड़ी दूर उर्ध्व की ओर उठी हुई एक पतली सी अग्नि शिखा स्थित है। उसी शिखा के मध्य में उस विराट पुरूष परमात्म तत्व का वास–स्थल है। वे ही ब्रह्म हैं, ईशान हैं, वही देवराज इन्द्र हैं। वे ही अविनाशी अक्षर एवं परम स्वराट् हैं यही महोपनिषद है।"[10]

यही उस नारायण का हृदय है जो सूक्ष्म रूप से सभी जीवित प्राणी में जीवन को नियन्त्रित करता है। श्री शुकदेव जी ने भी परमात्मतत्व का अनुभव एक ज्वाला के रूप में किया था जिसमें स्पन्दन होता रहता है। आज का विज्ञान यह मानता है कि हृदय के बीच में ही गति देने वाले स्पन्दन उभरते हैं। ऋषि ने उसी चैतन्यस्थल को ज्वाला का नाम दिया है। हृदय ही चैतन्य का निवासस्थान है। प्राणशक्ति है। यही आत्मा है। ऋषि शुकदेव जी ने जन्म के साथ ही चैतन्य का ज्ञान प्राप्त कर आत्मा को जान लिया था। उन्होंने आत्मतत्व के ज्ञान का जो अक्षय भण्डार समस्त ज्ञानियों को दिया है वह चिरकाल तक समाधिस्थ योगी को नई दिशा, नई ऊर्जा, नया विज्ञान प्रदान करता रहेगा। हमारे चारों वेद जिस विराट पुरूष से मनसपुरूष की कल्पना को पुरूष सूक्त के रूप में वर्णित करते आये हैं वह पुरूष सूक्त नारायण की ही स्तुति है।

विराट पुरूष की कल्पना में जीवन की उत्पत्ति तो प्रायः सभी पुराणों, वेदों, महाभारत में प्राप्त होती है परन्तु जिस विराट–स्वरूप का वर्णन श्रीमुख से भगवद्गीता में हुआ है वह क्या है? वही विश्वरूप पुरूष का है जो नारायण है। "गीता में अर्जुन को जब कृष्ण ने विश्व रूप का दर्शन कराया तो अनेक मुख और नेत्रों से युक्त अनेक अद्भुत दर्शनों वाले, अनेक दिव्य भूषणों से युक्त, अनेक दिव्य शस्त्रों को हाथ से उठाये, दिव्य माला और वस्त्रों को धारण किये हुये, दिव्य गन्ध का अनुलेपन किये

हुये, सब प्रकार के आश्चर्यों से युक्त, सीमारहित विराट स्वरूप परमदेव को दृष्टि मिलने पर अर्जुन ने देखा– आकाश में एक साथ हजारों सूर्य के एक साथ उदय होने जैसा प्रकाश होता है। अर्जुन ने प्रणाम करके कहा–हे देव! आपके शरीर से मैं सम्पूर्ण देवों को तथा अनेक भूतों के समुदायों को, कमल के आसन पर बैठे हुये ब्रह्मा को, महादेव को, सम्पूर्ण ऋषियों तथा दिव्य सर्पों को देखता हूँ। मैं आपके न आदि को, न मध्य को और न अन्त को ही देखता हूँ। आप शाश्वत धर्म के रक्षक हैं। आप अविनाशी सनातन पुरूष हैं।"[11]

यहाँ कृष्ण का विराट स्वरूप अर्जुन के मोह को भंग करने के लिये दिखाया गया था। भगवान ने स्वयं कहा कि ये रूप न किसी ने देखा है न देखेगा। सखा भाव से दिखाया गया वह रूप साधना के भक्ति योग के माध्यम से संसार को प्राप्त हुआ। अनेक ऋषियों ने भृगु ऋषि से इस पर प्रश्न किया कि सभी ऋषियों ने क्या एक ही रूप देखा या अलग–अलग – भृगु ऋषि ने साफ स्पष्ट किया कि जो साधक जितना साधना में आगे रहता है उसे उतना ही रूप का दर्शन होता है। इसलिये ब्रह्म या परमात्मा अनन्त रूपों वाला और अनन्त शक्तियों वाला है। जितनी जिसकी योग्यता होती है। उतनी उसको सिद्धि मिलती है। इसी लिये सभी धर्म दर्शन का तत्वज्ञान और अध्यात्मज्ञान अनेकों वर्णनों से मुक्त होने पर भी इसी बात को स्वीकार करता है कि ईश्वर का विराट पुरूष स्वरूप साधना और योग से ही देखा जा सकता है और सभी का अनुभव भी अलग ही होता है।

सन्दर्भ

1. आचार्य, पं० श्रीराम शर्मा. (सम्पादक). महोपनिषद्. प्रथमोअध्याय 1 से 3 मन्त्र साधना खण्ड।
2. महोपनिषद्. प्रथमोअध्याय 4, 5, 6 मन्त्र।
3. महोपनिषद्. प्रथमोअध्याय 7, 8, 9 मन्त्र।
4. ऋग्वेद–मण्डल 10. देवता–पुरूष, ऋषि–नारायण–पुरूष–सूक्त–1 से 16.
5. महोपनिषद. प्रथमोअध्याय 10, 11 मन्त्र।
6. महाभारत. शान्तिपर्व–मोक्षधर्म पर्व–182वाँ अध्याय. 1–4 श्लोक।
7. महाभारत. शान्तिपर्व–मोक्षधर्म पर्व–182वाँ अध्याय. 13, 14, 15 श्लोक।
8. महाभारत. शान्तिपर्व–मोक्षधर्म पर्व–182वाँ अध्याय. 16,17,18,19,20,21 श्लोक।
9. महाभारत. शान्तिपर्व–मोक्षधर्म पर्व–183वाँ अध्याय. 1 से लेकर 172 श्लोक।
10. महोपनिषद. प्रथमोअध्याय 12, 13, 14 मन्त्र।
11. श्रीमद्भगवद्गीता. अध्याय एकादश–9 से 19 श्लोक।